जैन दर्शन में आध्यात्मिक विकास

आध्यात्मिक विकास का प्रत्यय भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना महत्त्वपूर्ण आत्म-पूर्णता की अवधारणा है। जैन दर्शन में आध्यात्मिक विकास के विभिन्न स्तरों का विवेचन हुआ है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि उसमें इन विभिन्न स्तरों का विवेचन व्यवहार दृष्टि से ही किया गया है। पारमार्थिक (तत्त्व) दृष्टि से तो परमतत्त्व या आत्मा सदैव ही अविकारी है। उसमें विकास की कोई प्रक्रिया होती ही नहीं है। वह तो बन्धन और मुक्ति, विकास और पतन से परे या निरपेक्ष है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं — आत्मा गुणस्थान, मार्गणास्थान और जीवस्थान नामक विकास-पतन की प्रक्रियाओं से भिन्न है।[१] इसी बात का समर्थन प्रोफेसर रमाकान्त त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'स्पिनोजा इन दि लाइट ऑफ़ वेदान्त' में किया है। स्पिनोजा के अनुसार आध्यात्मिक मूल-तत्त्व न तो विकास की स्थिति में है और न प्रयास की स्थिति में।[२] लेकिन जैन-विचारणा में तो व्यवहार-दृष्टि भी उतनी ही यथार्थ है जितनी कि परमार्थ या निश्चयदृष्टि, चाहे विकास की प्रक्रियाएँ व्यवहारनय (पर्यायदृष्टि) का ही विषय हों; लेकिन इससे उसकी यथार्थता में कोई कमी नहीं होती।

आत्मा की तीन अवस्थाएँ

जैन दर्शन में आध्यात्मिक पूर्णता अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति ही साधना का लक्ष्य माना गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधक को साधना की विभिन्न श्रेणियों से गुजरना होता है। ये श्रेणियाँ साधक की साधना की ऊँचाइयों की मापक हैं, लेकिन विकास तो एक मध्य अवस्था है। उसके एक ओर अविकास की अवस्था है और दूसरी ओर पूर्णता की। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए जैनाचार्यों ने आत्मा की तीन अवस्थाओं का विवेचन किया है — १. बहिरात्मा, २. अन्तरात्मा और ३. परमात्मा।[३]

आत्मा के इन तीन प्रकारों की चर्चा जैन साहित्य में प्राचीन काल से उपलब्ध है। सर्वप्रथम हमें आचार्य कुन्दकुन्द के 'मोक्षप्राभृत' (मोक्खपाहुड) में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा की तीन अवस्थाओं की स्पष्ट चर्चा उपलब्ध होती है। यद्यपि इसके बीज हमें आचारांग जैसे प्राचीनतम आगम में भी उपलब्ध होते हैं। 'आचारांग' में यद्यपि स्पष्ट रूप से बहिरात्मा, अन्तरात्मा जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं है किन्तु उसमें इन तीनों ही प्रकार की आत्माओं के लक्षणों का विवेचन उपलब्ध हो जाता है।[४] बहिर्मुखी आत्मा को आचारांग में बाल, मन्द और मूढ़ के नाम से अभिहित किया गया है। ये आत्माएँ ममत्व से युक्त होती हैं और बाह्य विषयों में रस लेती हैं। अन्तर्मुखी आत्मा को पण्डित, मेधावी, धीर, सम्यक्त्वदर्शी और अनन्यदर्शी के नाम से चित्रित किया गया है। अनन्यदर्शी शब्द ही उनकी अन्तर्मुखता को स्पष्ट कर देता है। इनके लिये मुनि शब्द का प्रयोग भी हुआ है। आचारांग के अनुसार ये वे लोग हैं जिन्होंने संसार के स्वरूप को जानकर लोकेषणा का त्याग कर दिया है। पापविरत एवं सम्यग्दर्शी होना ही अन्तरात्मा का लक्षण है। इसी प्रकार आचारांग में मुक्त आत्मा के स्वरूप का विवेचन भी उपलब्ध होता है। उसे विमुक्त, पारगामी तथा तर्क और वाणी से अगम्य बताया गया है।

आत्मा के इस त्रिविध वर्गीकरण का प्रमुख श्रेय तो आचार्य कुन्दकुन्द को ही जाता है।[५] परवर्ती सभी दिगम्बर और श्वेताम्बर आचार्यों ने इन्हीं का अनुकरण किया है। कार्तिकेय, पूज्यपाद, योगीन्दु, हरिभद्र, आनन्दघन और यशोविजय आदि सभी ने अपनी रचनाओं में आत्मा के उपर्युक्त तीन प्रकारों का उल्लेख किया है —

१. **बहिरात्मा :** जैनाचार्यों ने उस आत्मा को बहिरात्मा कहा है, जो सांसारिक विषय-भोगों में रुचि रखता है। परपदार्थों में अपनत्व का आरोपण कर उनके भोगों में आसक्त बना रहता है। बहिरात्मा देहात्म बुद्धि और मिथ्यात्व से युक्त होता है।[६] यह चेतना की विषयाभिमुखी प्रवृत्ति है।

२. **अन्तरात्मा :** बाह्य विषयों से विमुख होकर अपने अन्तर में झाँकना अन्तरात्मा का लक्षण है। अन्तरात्मा आत्माभिमुख होता है एवं स्व-स्वरूप में निमग्न रहता है। यह ज्ञाता-द्रष्टा भाव की स्थिति है। अन्तर्मुखी आत्मा देहात्म बुद्धि से रहित होता है क्योंकि वह आत्मा और शरीर अर्थात् स्व और पर की भिन्नता को भेदविज्ञान के द्वारा जान लेता है।[७] अन्तरात्मा के भी तीन भेद किये गए हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि सबसे निम्न प्रकार का अन्तरात्मा है। देश-विरत गृहस्थ, उपासक और प्रमत्त मुनि मध्यम प्रकार के अन्तरात्मा हैं और अप्रमत्त योगी या मुनि उत्तम प्रकार के अन्तरात्मा हैं।

३. **परमात्मा :** कर्म-मल से रहित, राग-द्वेष का विजेता, सर्वज्ञ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वदर्शी आत्मा को परमात्मा कहा गया है। परमात्मा के दो भेद किये गए हैं — अर्हत् और सिद्ध। जीवनमुक्त आत्मा अर्हत् कहा जाता है और विदेहमुक्त आत्मा सिद्ध कहा जाता है।[८]

कठोपनिषद् में भी इसी प्रकार आत्मा के तीन भेद — ज्ञानात्मा, महदात्मा और शान्तात्मा — किये गए हैं। तुलनात्मक दृष्टि से ज्ञानात्मा, बहिरात्मा, महदात्मा, अन्तरात्मा और शान्तात्मा परमात्मा है।

मोक्षप्राभृत, नियमसार, रयणसार, योगसार, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि सभी में तीनों प्रकार की आत्माओं के यही लक्षण किये गए हैं।

आत्मा की इन तीनों अवस्थाओं को क्रमशः १. मिथ्यादर्शीआत्मा, २. सम्यग्दर्शीआत्मा और ३. सर्वदर्शीआत्मा भी कहते हैं। साधना की दृष्टि से हम इन्हें क्रमशः पतित अवस्था, साधक अवस्था और सिद्धावस्था कह सकते हैं। अपेक्षा-भेद से नैतिकता के आधार पर इन तीनों अवस्थाओं को १. अनैतिकता की अवस्था, २. नैतिकता की अवस्था और ३. अतिनैतिकता की अवस्था कहा जा सकता है। पहली अवस्था वाला व्यक्ति दुराचारी या दुरात्मा है, दूसरी अवस्था वाला सदाचारी या महात्मा है और तीसरी अवस्था वाला आदर्शात्मा या परमात्मा है। जैन दर्शन के गुणस्थान सिद्धान्तों में प्रथम से तीसरे गुणस्थान तक बहिरात्मा की अवस्था का चित्रण है। चतुर्थ से बारहवें गुणस्थान तक अन्तरात्मा की अवस्था का विवेचन है। शेष दो गुणस्थान आत्मा के परमात्म-स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। पण्डित सुखलालजी इन्हें क्रमशः आत्मा की (१) आध्यात्मिक अविकास की अवस्था, (२) आध्यात्मिक विकास-क्रम की अवस्था और (३) आध्यात्मिक पूर्णता या मोक्ष की अवस्था कहते हैं।[९]

सन्दर्भ

१. नियमसार, ७७.
२. स्पिनोजा इन दि लाइट ऑफ वेदान्त, पृ० ३८ टिप्पणी, १९९, २०४.
३. (अ) अध्यात्ममत परीक्षा, गा० १२५.
   (ब) योगावतार, द्वात्रिंशिका, १७-१८.
   (स) मोक्खपाहुड, ४.
४. देखिए — आचारांग, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन ३-४.
५. मोक्खपाहुड, ४.
६. वही, ५, ८, १०, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. वही, ५, ९.
८. वही, ५, ६, १२.
९. विशेष विवेचन एवं सन्दर्भ के लिये देखिये —
(अ) दर्शन और चिन्तन, पृ० २७६-२७७.
(ब) जैनधर्म, पृ० १४७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org